Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

प्राचीन ग्रन्थों में सुषिर वाद्य 'बांसुरी' का उल्लेख

Satish Kumar

Assistant Professor, Dept. of Instrumental Music, Banaras Hindu University, Varanasi, U.P.

शोध सार

गायन, वादन एवं नृत्य इन तीनों के सम्मिलित रूप को 'संगीत' कहा जाता है। संगीत में वादन का अभिप्राय वाद्ययंत्र से है, संगीत की दोनों विधाओं में उपयोग होने वाले वाद्यों का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राचीन काल से ही भारतीय संगीत में गायन के साथ बाँसुरी एवं वीणा की संगति होती आ रही है। भारतीय संगीत में सुषिर वाद्यों का इतिहास अति प्राचीनतम् माना गया है। जिनमें सुषिर वाद्यों के अन्तर्गत प्रमुख रूप से बाँसुरी आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक संगीत के प्रत्येक विधाओं के साथ संगत वाद्य के साथ–साथ एकल वादन में अपना अस्तित्व विश्व संगीत के पटल पर बनाए हुए है। प्राचीन ग्रन्थों ऋग्वेद, सामवेद, रामायण, महाभारत, नाट्यशास्त्र, नारदीय शिक्षा, बृहदेशी, संगीतरत्नाकर आदि में सुषिर वाद्य 'बांसुरी' का उल्लेख प्राप्त होता है। संगीत ग्रन्थों के साथ–साथ भक्तिपरक साहित्य में भी सुषिर वाद्य 'वंशी' का उल्लेख सर्वदा होता रहा है।

बीज शब्दः प्राचीन ग्रन्थ, सुषिर वाद्य, बांसुरी।

भूमिका

भारतीय संगीत प्राचीन काल से ही अपने धर्म एवं संस्कृति के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। गायन तथा नृत्य के अलावा वादन में भी संगीत प्रेमियों की आस्था जुड़ी हुई है। भारतीय संगीत के शास्त्रों में वाद्यों को चार वर्गों में बाँटा गया है। पहला–तत्, दूसरा–सुषिर, तीसरा–अवनद्ध एवं चौथा–घन वाद्य। इन सभी वाद्यों का सम्बन्ध प्राचीन ग्रन्थों में इस प्रकार बताया गया है। तत् एवं सुषिर वाद्यों का सम्बन्ध देवताओं एवं गंधर्वो से, अवनद्ध वाद्यों का सम्बन्ध राक्षसों से तथा घन वाद्यों का सम्बन्ध किन्नरों से बताया गया है। यही कारण है कि वेदों, उपनिषदों एवं प्राचीन संगीत ग्रन्थों में हमें वाद्यों का वर्णन किसी–न–किसी देवता से सम्बंधित प्राप्त होता है। जैसे– बाँसुरी से भगवान कृष्ण, वीणा से माता सरस्वती तथ डमरू से भगवान शिव आदि।

बाँसुरी का ध्यान मन में आते ही सर्वप्रथम उस नटवर मुरलीधर भगवान श्रीकृष्ण की प्रतिमा हृदय के धरातल पर अवतरित हो जाती है। आखिर बाँस के इस टुकड़ें में ऐसा कुछ तो निश्चित ही था जिसके कारण भगवान ने स्वयं इसे अपने अधरों पर धारण किया। नाद के जिस ब्रह्मरूप का सभी संगीत साधक उपासना करते हैं, उसका मूल इसी बांस के टुकड़े में विद्यमान है, तभी तो प्राचीन ग्रन्थों में 'बाँसुरी' को स्वरज्ञान की संज्ञा दी गई है।

प्राचीन कालीन भारतीय संगीत ग्रंथों में सुषिर वाद्य 'वंशी' का उल्लेख सर्वदा होता रहा है। वैदिक काल में यह वाद्य 'वेणु' के नाम से सुविख्यात रहा, 'नाद' उत्पन्न होने के कारण इस वाद्य को 'नादी' की संज्ञा दी गयी है। इस काल में 'वंशी' को आधार स्वर बनाकर 'वीणा' आदि वाद्यों के स्वरों को मिलाया जाता था।

ऋग्वेद में 'नाड़ी' नाम के वाद्य का उल्लेख मिलता है, जिसे 'वंशी' वाद्य का प्राचीनतम् स्वरूप माना जाता है। 'वेणु' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद (255.3) में दान स्तुति के रूप में आया है। 'वंशी' जैसी फूँककर बजाएं जाने वाला सुषिरवाद्य 'तुणव' का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद (1.27.3) में 'वेणु' शब्द का कई बार प्रयोग देखने को मिला है।

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि यह वाद्य उस काल में बहुत लोकप्रिय था। सामवेद में भी वेणु वाद्य की चर्चा मुख्य रूप से की गयी है। तथा साम गाते समय वीणा और वेणु की संगति महत्वपूर्ण मानी गयी है। रामायण काल में भी 'वेणु' का उल्लेख मिलता है। यह वैदिक काल के 'वेणु' से इसकी संरचना में कुछ और प्रगति हुई है। किष्किन्धा काण्ड के 30वे सर्ग के 50वें श्लोक में 'वेणु' का उल्लेख मिलता है।

वेणुस्वरवयञ्जित तूर्यमिश्रः प्रत्युषकालेऽनिलसंप्रवृतः ।

संमूर्च्छितो गह्वरगोवृषाणामन्योन्यमापूरयतीव शब्दः।।

रामायण काल में वेणु के कई प्रकार प्रचलित थे। सुन्दरकाण्ड में 'वंश' शब्द का उल्लेख हुआ है जो कि वेणु का ही पर्याय है। महाभारत काल में भी 'वंशी' का उल्लेख कई प्रकारों में हुआ था। इस काल में भगवान श्रीकृष्ण और उनकी वंशी का उल्लेख इस ग्रन्थ में मिलता है। वंशी अथवा वेणु के अतिरिक्त भी इससे मिलते–जुलते कई वाद्यों का उल्लेख इस काल में प्राप्त होता है।

प्राचीन कालीन तमिल साहित्य में 'वंशी' के लिए 'कुलाल' संज्ञा का प्रयोग होता था। 'सिल्पादिकारम्' नामक प्राचीन तमिल साहित्य में बनावट की दृष्टि से बाँसुरी की लम्बाई बीस यूनिट तथा उसकी परिधि साढ़े चार यूनिट बतलायी गयी है। इस ग्रन्थ में प्राप्त बाँसुरी के विवरण से यह पता चलता है कि यह बाँसुरी आधुनिक दक्षिण भारतीय बाँसुरी के समान रही होगी।

कालिदास के समय में जो संगीत के आयोजन होते थे, उनमें गाता, वेणु वादक, तथा मुरज वादक इन तीनों का सहयोग आवश्यक होता था। 'वंशी के उत्पत्ति के सम्बन्ध में 'कुमारसम्भवम्' के रचयिता कालिदास ने एक सुन्दर कल्पना की है। भौरों द्वारा छिद्रित बांस के वृक्ष में जब हवा का प्रवाह हुआ तब उससे ध्वनि उत्पन्न हुई, वह ध्वनि सुनने में बहुत कर्ण प्रिय थी जिसे सुनकर, गान्धर्व और किन्नर इतने प्रभावित हुए की उस नलिका को वंशवृक्ष से अलग कर अपने मुख की वायु के द्वारा वादन करने लगे, फिर उसे एक वाद्य के रूप में प्रचलित किया।

सांगीतिक दृष्टिकोण से प्रायः 'वेणु' अर्थात 'वंशी' ही साहित्यकारों एवं संगीतज्ञों का सर्वाधिक प्रमुख केन्द्र बिन्दु था। वैदिक काल में गायन के साथ वीणा और वंशी वाद्य पर संगति की जाती थी।

जहाँ 'वेणु' पर साम के स्वरों का वादन होता था वहीं भरत के नाट्यशास्त्र में भी 'वेणु' को एक प्रमुख वाद्य के रूप में वर्णित किया गया है और इसमें गांधर्व का उत्पत्ति स्थान गान, वीणा और वंशी बताया गया है। इस तथ्य की पुष्टि भरतमुनि रचित नाट्यशास्त्र के निम्नलिखित श्लोक से प्राप्त होती है–

यं यं गाता स्वरं गच्छेत् तं तं वंशेन वादयेत्।

शारीर वैणवंश्यानामेकीभावः प्रशस्यते।।10।।

इसी प्रकार पुराणों में अनेक स्थलों पर वीणा और वेणु वाद्य का सहचर्य दिखाया गया है। गायन और सुषिर वाद्य का अटूट सम्बन्ध इस बात से सिद्ध होता है कि 'श्रीमद्भागवत् महापुराण में 'वेणुगीत' नामक एक अलग अध्याय का ही सृजन किया गया है साथ ही साथ 'मार्कण्डेय' पुराण में भी यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि किन्नरों के गीतों के साथ वीणा तथा वेणु वाद्य की संगति की जाती थी।

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

नारदीय शिक्षा में वैदिक संगीत एवं लौकिक संगीत को स्पष्ट करने के लिए वेणु वाद्य का सहारा लिया गया है–

''य सामगानां प्रथमः स्वरः स वेणोर्मध्यमः स्मृतः''

इस श्लोक से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि नारद मुनि ने तो वेणु पर उत्पन्न स्वरों को सामगान के स्वरों से सामञ्जस्य स्थापित करने का भी प्रयत्न किया है।

भरत मुनि ने अपने ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में वंशी एवं उसकी वादन विधि तथा उस पर निकलने वाले स्वरों की विस्तृत उल्लेख किया है। भरत मुनि कहते है कि सुषिर वाद्य मूलतः बांस से बने हुए हैं। अतः उन्हें 'वंशवाद्य' या संक्षेप में 'वंश' कहा जाता है। भरतमुनि के अनुसार वंश की विधि भी वीणा के समान ही स्वर–ग्राम से युक्त है।

आतोघं सुषिरं नाम ज्ञेयं वंश कृतं बुधैः।

वैण एवं विधिस्त्रव स्वर ग्राम समाश्रयः ।।

भरतकाल में 'वंशी' के स्वर दो, तीन या चार श्रुतियों के होते थे और उन्हें निकालने की विधि के अनुसार क्रमशः कम्पित, अर्द्धमुक्त और व्यग्रमुक्त कहे जाते थे। भरतकाल में वंशी पर गायन के सभी स्वरों का वादन किया जाता था। सम्भवतः संगत के लिए भी वंशी का उपयेाग किया जाता था। भरतमुनि के अनुसार गायक गाते समय जिन–जिन स्वरों पर जाता है, वंशीवादक को उन–उन स्वरों को ही बजाना चाहिए।

मतंग ने भी अपने ग्रन्थ 'बृहदेशी' में वंशी का उल्लेख किया है। किन्तु उनके ग्रन्थ का वाद्याध्याय उपलब्ध न होने के कारण उसकी सम्पूर्ण व्याख्या उपलब्ध नहीं हो पायी है। 'भरतकोष' नामक ग्रंथ में मतंग के मतानुसार 'वंशे वैदिक स्वर निर्णयः' एवं ''वंशे रसभावयोरेकीभावः'' के अन्तर्गत वंशी पर बजाए जाने वाले विभिन्न स्वरों के वादन विधि आदि का उल्लेख हुआ है जो भरत मत का ही अनुकरण करता है।

अभिनवगुप्त के अनुसार वंशी खैर की लकड़ी तथा लोहे से बनी होती है। उन्होंने इस बात की भी पुष्टि की है कि वंशी में कुल नौ छिद्र होते थे जिनमें पहला अर्थात मुखरन्ध्र एवं नवॉ अर्थात् अन्तिमरन्ध्र क्रमशः वायु भरने तथा वायु निकालने के लिए होता था। स्वरों के उत्पत्ति के लिए सात छिद्र होते थे मुखरन्ध्र से प्रथम तीन को बायें हाथ की अँगुलियों से एवं अन्य चार छिद्रों को दाहिने हाथ की अँगुलियों से ढका जाता था। ऋक् से अर्थव तक सभी वेदों परवर्ती ब्राह्मण उपनिषद्, शिक्षा व पुराणों तथा प्राचीन ग्रंथों में वीणा के साथ–साथ सुषिर वाद्यों का उल्लेख मिलता है, जिनमें 'वंशी या वेणु' का ही प्रमुखता दी गयी है। शिक्षा ग्रंथों में वैदिक स्वरनामों को गान्धर्व स्वरनामों से जोड़ा गया है। जिससे वैदिक व लौकिक स्वरनामों का आपस में सम्बन्ध का पता चलता है।

नाट्यशास्त्र में बाँसुरी

भरत ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र में आतोघ विधि का विवेचन करते समय बाँसुरी को विशेष महत्व दिया है। स्वर वाद्यों में वीणा के साथ 'बाँसुरी' का उल्लेख प्रमुख रूप से किया है। सुषिर का उल्लेख करते समय उन्होंने प्रमुख रूप से 'वंश' का ही नाम लिया है। यहां वंश का अभिप्राय बाँसुरी से है।

''सुषिरो वंश उच्यते।।''

अथवा ''आतोधं सुषिरं नामशेय वंशगतंबुधेः।

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

कुतप विन्यास में बाँसुरी का उल्लेख

ततः कुतपविन्यासो गायनः सपरिग्रहः।

वैपञ्चि को वैणिकश्च वंश वादन स्तभैव च।।

उपरोक्त श्लोक से इस बात की पुष्टि होती है कि तत् वाद्यों में जहाँ भरत ने विपञ्ची वादक, मतकोकिला वीणा आदि वाद्य का उल्लेख किया है तथा अवनद्ध वाद्यों में मार्दगिक, पाण्विक व दार्दरिकों का नाम लिया है, वहीं कुतप विन्यास में तत् कुतप के अन्तर्गत गायकों के सपरिवार के साथ 'वंशी वादकों' का ही नाम लिया गया है। अतः इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि सुषिर वाद्यों में सर्वप्रथम स्थान 'वंशी वादकों का ही रहा है।

सुषिराध्याय में बाँसुरी का वर्णन

भरत ने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र अध्याय तीस में सुषिर आतोघ का लक्षण बताते हुए केवल 'वंश' का ही विवेचन किया है। अन्य सुषिर वाद्यों का उल्लेख तक नहीं किया। इससे स्पष्ट है कि भरत के काल में 'वंशी या वेणु' का महत्व अत्यधिक रहा। यद्यपि वंशी के अतिरिक्त अन्य सुषिर वाद्य भी रहा होगा किन्तु मुख्य रूप से 'वंशी' को ही महत्वपूर्ण विषय बनाया गया। शारंगदेव कृत 'संगीतरत्नाकर' ग्रन्थ में भी चौदह प्रकार के वंशी को बनाने व बजाने की विधि का वर्णन प्राप्त होता है।

संगीत रत्नाकर में बाँसुरी का विवचेन

शारंगदेव अपने ग्रंथ 'संगीतरत्नाकर' के छठवें अध्याय वाद्याध्याय में तत्वाद्य के पश्चात सुषित वाद्यों का उल्लेख किया है और उसमें वंशी का भी सर्वप्रथम विस्तृत वर्णन किया है। कई प्रकार के वंशी, वंशी में फूंक की विधि, वीणा के समान धातु प्रकार, फूँक क 12 गुण व 10 दोष, वंशी वादक के गुण–दोष, वांशिक वृन्द तत्पश्चात् कुछ देशी रागों का वंशी में वादन विधि के साथ विस्तृत उल्लेख किया है। अन्त में सुषिर के अन्य प्रकार पाव, पाविका आदि वाद्यों का भी अल्प विवेचन किया गया है।

'संगीतरत्नाकर' के तृतीय प्रकीर्णाध्याय में वृन्द भेद का लक्षण दिया गया है। इस ग्रन्थ में तीन प्रकार के 'वृन्द' भेद बतलाए गये हैं– उत्तम, मध्यम, व कनिष्ठ। उत्तम वृन्द का उल्लेख करते हुए शारंगदेव ने कहा है कि चार मुख्य गाता, आठ सामगायक, बारह गायिका, चारवांशिक व चार मार्दगिक होते हैं। इसका आधा मध्यम वृन्द व कनिष्ठ वृन्द में लगभग इसका दो तिहाई होता है। शारंगदेव ने पृथक वृन्द बताए हैं। भरत के कुतप को ही शारंगदेव ने वृन्द कहा है। शारंगदेव ने भरत के ''त्रिकुतप'' का किञ्चित विस्तार से व्याख्या की है। इन तीन कुतप के समूह को ही शारंगदेव ने 'वृन्द' कहा है। उपर्युक्त वृन्द में वशी अपना विशिष्ट स्थान रखता है। शारंगदेव के पश्चात् 'पार्श्वदेव' ने अपने ग्रन्थ 'संगीत समयसार' में चार प्रकार की वंशी क्रमशः जय, विजय, नन्द और महानंद के बारे में चर्चा की है तथा वंशी के आकार की लम्बाई भी बताई है।

मध्यकालीन ग्रंथकार 'शुभंकर' ने अपने ग्रंथ 'संगीत–दामोदर' में मतंग के मत का उल्लेख करते हुए बताया है कि वंशी वाद्य अन्य दोषों से रहित हाथी दांत, चांदी, ताम्बा, पीतल, चन्दन, रक्तचंदन या लोहे का बना होना चाहिए तथा इसका गर्भरन्ध्र कनिष्ठा अंगुली के बराबर होना चाहिये।

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

इसके पश्चात् कई विद्वानों ने लगभग शारंगदेव के बताये 'वंशी' के प्रमाणों का ही अनुकरण किया है, जिसमें भरतकोष के रचनाकार 'वेमभूपाल' संगीतदर्पण के रचनाकर 'दामोदर पण्डित' संगीतसारामृत के रचनाकर 'तुलज्ञानरेश', एवं अभिनव भरतसारसंग्रह के रचियता 'हरिपाल' इत्यादि है।

निष्कर्ष

संगीत ग्रन्थों के साथ–साथ भक्तिपरक साहित्य में भी सुषिर वाद्य 'वंशी' का उल्लेख सर्वदा होता रहा है। 'श्रीमद्भागवत' महापुराण में भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा वेणु पर गीत बजाने के प्रभाव का मनोहारी चित्रण किया गया है।

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत– पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिवन्त्यः ।
शावाः सन्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थु– र्गोविन्दमात्मनि दृशाचुकलाः स्पृशन्त्यः ।।13।।

जब भगवान श्रीकृष्ण वेणु को अपने अधरों पर लगाकर जब गीत के स्वरों का वादन करते थे तो गाये उसे सुनकर अपने दोनों कान खड़े कर लेती थी एवं उस अमृतरूपी संगीत का रसास्वादन करने लगती थी, उनके बछड़े अचानक वेणु के ध्वनि से मन्त्रमुग्ध होकर अपने मुँह में लिए हुए दूध के घूँट को न तो उगल पाते थे और न ही निगल पाते थे। उनके हृदय में भगवान श्रीकृष्ण की प्रतिमा हृदय के धरातल पर अवतरित हो जाती थी तथा उनके नेत्रों में आनन्द के आँसु छलकने लगते थे।

प्राचीनकालीन ग्रन्थों से पता चलता है कि समाज में बाँसुरी को विशेष स्थान प्राप्त था। हालांकि अन्य वाद्यों के साथ–साथ बाँसुरी का प्रयोग भी मुख्य गायन के साथ संगत करना एवं गायन के अन्तर्गत स्वर विस्तार तथा आलापों की बढ़त करना था। साथ ही साथ यह भी पता चलता है कि मांगलिक कार्यो एवं संगीत के आयोजनों में संगीत के लिए बाँसुरी का स्थान नितान्त आवश्यक रहा है। वैसे तो यह वाद्य विभिन्न रूपों में पूरे विश्व में पाया जाता है किन्तु भारत में पाए जाने वाले 'बांस' की बाँसुरी की आवाज़ मानव मन ही नहीं अपितु सभी प्राणी यहां तक की पादपों को भी इसकी आवाज़ आनंदभूषित कर देती है। आदिकाल से ही यह वाद्य संगीत के बदलते रूपों के साथ–साथ बाँसुरी वादन की परम्परा अपने परिमार्जित रूप में प्रयुक्त होती रही है।

संदर्भ

चौधरी, सुभद्रा. (2006). शारंगदेव कृत संगीतरत्नाकर. राधा पब्लिकेशन्स अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली.
मिश्र, डॉ. लालमणि. (2005). भारतीय संगीत वाद्य. भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली.
सिंह, डॉ. जयदेव. ठाकुर. और (सम्पादिका) शर्मा, प्रेमलता, (1969). भारतीय संगीत का इतिहास. विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी.
शर्मा, डॉ. स्वतंत्र. (1995). भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण. लेजर टाइप सेटिंग शास्त्रीनगर, इलाहाबाद.
जायसवाल, डॉ. राधेश्याम. (2013). भारतीय संगीत के सुषिर वाद्यों का इतिहास. कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, दरियागंज, नई दिल्ली.
बृहस्पति, आचार्य. (1986). नाट्यशास्त्र 28वाँ व 30वाँ अध्याय. बृहस्पति पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली.